८२

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—११८

वेणु लो, गूँजे धरा

[काव्य-संग्रह]

•

माखनलाल चतुर्वेदी

•

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

भूमिका

जो तुकबन्दियाँ इस संग्रहमें दी गई हैं उनकी संख्या भले ही कितनी हो किन्तु उनके स्वरकी विविधताका ही ध्यान रखना होगा।

पक्षी जब वृक्षसे उड़ता है तो किसी वृक्षकी डालीपर पुनः बैठता भी है। जिस समय अन्धड़के थपेड़ोंसे वृक्षकी डालियाँ औंधी-सीधी-सी होने लगती हैं; उस समय पक्षियोंके स्वरोंमें भी कँपकँपी-सी आने लगती है। पता नहीं यह मनोवैज्ञानिक सत्य है या स्थित्यन्तर मात्र है? किन्तु अन्तरसे विज्ञान तक मनो-विज्ञानकी जो सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, कभी-कभी उनमें साँस आती है, वे बहुत ज़िन्दा होती हैं? इन सीढ़ियोंपर बैठकर लिखा जाय? ना जी, इन्हीं सीढ़ियोंपर लिखा जाय!

नीले आसमानकी आशिकीमें दीवारों या पर्वत-शिखरोंकी तरह ऊँचे उठनेवाले, वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति, किसीको जाने यह मालूम है कि नहीं कि पानी अधिक हुआ कि नीला दिखा, हवा घनी हुई कि नीली दिखी, अवकाश घना हुआ कि नीला दिखा। यह हमारा दृष्टि-घोष है या दृष्टि-दोष है; कहना कठिन है। किन्तु ऊपरकी हर उठानको लोगोंने 'श्यामसुन्दर' नाम ही दिया है। मेरे निकट तो 'श्यामसुन्दर' मीठा, आकर्षण-शील परम सत्य है। जब वायु ज़ोरसे चलती है, मुझे लगता है उसने वेणु ले ली है, और जब अन्धड़का सन्नाटा सुनता हूँ तो लगता है धरा गूँजने लगी है। किन्तु अधरोंसे धाराधरों तक सब जगह मेरा अज्ञान सुरक्षित है। वह अजर है, अमर है, साँसें लेता-सा है। अतः अपनी पंक्तियोंमें अच्छाइयाँ ढूँढ़नेका असफल प्रयत्न क्यों करूँ?

कर्मवीर कार्यालय
खण्डवा, मध्यप्रदेश
२३–४–६०

—माखनलाल चतुर्वेदी

विषय-सूची

क्रम	प्रथम पंक्ति	पृष्ठ-संख्या

: १ :

अंजलि के फूल गिरे जाते हैं
आये आवेश फिरे जाते हैं।

चरण-ध्वनि पास-दूर कहीं नहीं
साधें आराधनीय रही नहीं
उठने, उठ पड़ने की बात रही
साँसों से गीत बे-अनुपात रही

बागों में पंखनियाँ झूल रहीं
कुछ अपना, कुछ सपना भूल रहीं
फूल-फूल धूल लिये मुँह बाँधे
किसको अनुहार रही चुप साधे

दौड़ के विहार उठो अमित रंग
तू ही 'श्रीरंग' कि मत कर विलम्ब

बाँधी-सी पलकें मुँह खोल उठीं
कितना रोका कि मौन बोल उठीं
आहों का रथ माना भारी है
चाहों में क्षुद्रता कुँआरी है

आओ तुम अभिनव उल्लास भरे
नेह भरे, ज्वार भरे, प्यास भरे

अंजलि के फूल गिरे जाते हैं
आये आवेश फिरे जाते हैं॥

: २ :

मखमल हरी मोतियों वाली, अग-जग छवि कैसी बाँकी है
नील-गगन आकाश-कुसुम की कितनी मन मोहिनि झाँकी है !
रोज़ रात को सपने बनती, रोज़ सबेरे जी जाती है
एक-एक अनहोनी-सी गति कितने मधु फेरे खाती है !

चिर तरुणी क्षिति, चिर नवीन गति, चिर यौवन की बाढ़ सँभालो
फागुन के फूलों को देकर, बरस उठा आषाढ़ सँभालो !

जग की अमर उभर को जाने, जग की 'ऊगन' को पहिचाने
जीवन वही कि जो जीवन की अमर तरुण मौलिकता जाने !

दुख पुरुषार्थी की करवट है, सुख श्रम की परिणति का घर है
घूप-छाँह से कैसा झगड़ा, कभी इधर है, कभी उधर है ॥

क्या आकाश उतर आया है
दूबों के दरबार में
नीली भूमि हरी हो आई
इस किरणों के ज्वार में ।

क्या देखें तरुओं को, उनके
फूल लाल अंगारे हैं
वन के विजन भिखारी ने
वसुधा में हाथ पसारे हैं ।

नक्शा उतर गया है वेलों
की अलमस्त जवानी का
युद्ध ठना, मोती की लड़ियों
से दूबों के पानी का ।

तुम न नृत्य कर उठो मयूरी
दूबों की हरियाली पर
हंस तरस खायें उस–
मुक्ता बोने वाले माली पर ।

ऊँचाई यों फिसल पड़ी है
नीचाई के प्यार में,
क्या आकाश उतर आया है
दूबों के दरबार में ?

बोल रे, मानस के पंछी
मन की बोली बोल !

कितनी दूर कि इतनी दूरी
उड़ता प्राण - समेट
कौन याद का सजग शिकारी
खेल रहा आखेट ।

दुख में पीड़ित, सुख में हर्षित
हो मत अभिनव धीर
उपनिषदों ने खींची निर्भय
तेरी ही तसवीर !

एक बार अपने आँगन की
जड़ी साँकलें खोल ।
बोल रे, मानस के पंछी
मन की बोली बोल ।

: ५ :

कैसी है पहिचान तुम्हारी
राह भूलने पर मिलते हो !

पथरा चलीं पुतलियाँ, मैंने
विविध धुनों में कितना गाया
दायें-बायें, ऊपर-नीचे
दूर-पास तुमको कब पाया

धन्य कुसुम ! पाषाणों पर ही
तुम खिलते हो तो खिलते हो ।
कैसी है पहिचान तुम्हारी
राह भूलने पर मिलते हो ॥

किरणों प्रकट हुए, सूरज के
सौ रहस्य तुम खोल उठे से
किन्तु अँतड़ियों में ग़रीब की
कुम्हलाये स्वर बोल उठे से !

काँच-कलेजे में भी करुणा-
के डोरे ही से खिलते हो ।
कैसी है पहिचान तुम्हारी
राह भूलने पर मिलते हो ॥

प्रणय और पुरुषार्थ तुम्हारा
मनमोहिनी धराके बल हैं
दिवस-रात्रि, बीहड़-बस्ती सब
तेरी ही छाया के छल हैं।

प्राण, कौन से स्वप्न दिख गये
जो बलि के फूलों खिलते हो ॥
कैसी है पहिचान तुम्हारी
राह भूलने पर मिलते हो ॥

चाँदनी से दूध झरता है
भला वे स्तन कहाँ हैं ?
सूर्य-किरनें, चन्द्र-किरनें एक हैं
अनबन कहाँ है ?

ये सुनहली, ये रुपहली, भेद कैसा
और अन्तर भी रहे तो खेद कैसा
चाँदनी में किरन-डोरें थामकर
कुछ खींच कर
और अपनी युगल दृग-कोरें
ज़रा सी मींचकर

गगन से ले होड़ जब-जब कल्पना ऊपर गई
प्यार के उपकरण अपने, नयी बूँदों सींच कर
तब न जाने चाँदनी की चमक से क्यों डोर छूटी
अमर मेरी भावनाएँ भला किसने अहह लूटीं
चाँदनी की डोरियाँ वे रह गईं
छूट कर मेरी विफलता कह गईं ।

किन्तु चाँदी की सुकोमल डोरियों की छोरियाँ ये
हाथ में बँधती नहीं हैं, मधुर सीनाजोरियाँ ये
स्वर्ग से भू-लोक तक ये रेशमी भ्रम सा उभारे
भाग्यपर क्या लिख रही हैं, कुछ हमारे, कुछ तुम्हारे

गगन ने किस ग्वालिनी की दूध की मटकिया पा ली
कौन सा था कान्हरी, जिसने कि हँस-हँस फोड़ डाली ?
अंशुमाली कौन वनमाली बना गलबाँह डाले,
चाँद को दे चाँदनी है कौन सी छबियाँ सम्हाले ?

: ७ :

क्षण - क्षण मैं छाया के चित्र बनाती हूँ
जाने मैं क्यों आँगन में दौड़ी आती हूँ।

नीले नभ पर हँस रहा निरख कर सहस-ज्योति
उसका प्रकाश, छाया में बनता अन्धकार!
श्रम पर क्रम धर, चढ़ती इच्छाएँ माली की
जब बरस-बरस उठता मेरा श्यामल उदार!

साँझें अकुला-अकुला कर नीड़ों में जातीं
पंखों से पंख लिपट जाते तब सोती हैं।
दिन की दौड़ें, जीवन की मोड़ें मनचाहीं
चुप-चुप में चढ़कर फिर ऐसी ही होती हैं।

सूली के घर मन को कितना समझाती हूँ
जाने मैं क्यों आँगन में दौड़ी आती हूँ!

यह ज्ञान-ध्यान, पूजा-अर्चा, ये नमस्कार
आँसू की बूँदों से कितने उथले से हैं,
श्रम के पंथी, जीवन की गाँठें खोल-खोल—
मैले अंगों जी के कितने उजले से हैं!

यह तो तू है, जो नित्य बुना करती जाली
क्या इसी जाल में रूप तुम्हारा छनता है ?
क्या इसी खेत में, हरा, लाल, काला, पीला
मनहरण, तुम्हारा रूप बिगड़ता-बनता है !

कटु में मीठा, अनचाहे बरबस घोल-घोल
जाने मैं क्यों आँगन में दौड़ी आती हूँ ?

: ८ :

धीरज को यह लाज आ गई, कैसा मधुर त्रिकोण बन गया
बहुत बोलता हुआ पराजय, सहते-सहते मौन बन गया।

वचनों से
सपनों के रिश्ते में
कैसी यह लाज लग गई;
बरसों जिसे बचाया
बैरिन
चुपके-चुपके आज लग गई।

भूल-भूल जाने में
सुख है,
झूल-झूल जाने की
यादें;
लज्जा से लिपटे बैठी हैं
कुछ मनुहारें
कुछ फरियादें।

सूरज की किरनें हिम-नग पर
उतर-उतर चरती हैं जाड़ा।
इन सोने की गायों को
कैसे भाया
चाँदी का बाड़ा?

हरित अलकनन्दा के तट यह
सुन्दरता सव्याज लगती है;
उधर हिमानी शरमाती है,
इनको इधर लाज लगती है !

बेलि काँप उट्ठी है, वृक्षों—
के सिर आज बर्फ़ उतरी है,
ऊपर-नीचे
दायें-बायें
जल-थल-नभ में
भरी-भरी है।

मानव की नज़रों से ठण्डी
कैसी विषम आग लगती है,
लगता है पंखनियों को भी
उड़ते आज लाज लगती है।

लज्जा से चुप-चाप हुआ-सा
मनहर हिम का द्रोण बन गया।
धीरज को
यह लाज आ गई
कैसा मधुर त्रिकोण बन गया ॥

नयी-नयी कोपलें, नयी कलियों से करती जोरा-जोरी
चुप बोलना, खोलना पंखुड़ि, गंध वह उठा चोरी-चोरी।

उस सुदूर झरने पर जाकर हरने के दल पानी पीते
निशि की प्रेम-कहानी पीते, शशि की नव-अगवानी पीते।

उस अलमस्त पवन के झोंके ठहर-ठहर कैसे लहराते
मानो अपने पर लिख-लिखकर स्मृति की याद-दिहानी लाते।

वेलों से वेलें हिलमिलकर, झरना लिये बखेर उठी हैं
पंथी पंछी दल की टोली, विवश किसी को टेर उठी है।

किरन-किरन सोना बरसाकर किसको भानु बुलाने आया
अंधकार पर छाने आया, या प्रकाश पहुँचाने आया।

मेरी उनकी प्रीत पुरानी, पत्र-पत्र पर डोल उठी है
ओस बिन्दुओं घोल उठी है, कल-कल स्वर में बोल उठी है।

: १० :

ये प्रकाश ने फैलाये हैं पैर, देख कर ख़ाली में
अन्धकार का अमित कोष भर आया फैली व्याली में

ख़ाली में उनका निवास है, हँसते हैं, मुसकाता हूँ मैं
ख़ाली में कितने खुलते हो, आँखें भर-भर लाता हूँ मैं
इतने निकट दीख पड़ते हो वन्दन के, बह जाता हूँ मैं
संन्ध्या को समझाता हूँ मैं, ऊषा में अकुलाता हूँ मैं

चमकीले अंगूर भर दिये दूर गगन की थाली में
ये प्रकाश ने फैलाये हैं पैर, देख कर ख़ाली में ॥

पत्र-पत्र पर, पुष्प-पुष्प पर कैसे राज रहे हो तुम
नदियों की बहती धारा पर स्थिर कि विराज रहे हो तुम
चिड़ियाँ फुदकीं, कलियाँ चटकीं, फूल झरे हैं, हारे हैं
पर शाखाओं के आँचल भी भरे-भरे हैं, प्यारे हैं।

तुम कहते हो यह मैंने शृङ्गार किया दीवाली में ॥
ये प्रकाश ने फैलाये हैं पैर देख कर ख़ाली में ॥

चहल-पहल हलचल का बल फल रहा अनोखी साँसों में
तुम कैसे निज को गढ़ते हो भोलेपन की आसों में
उनकी छवि, मेरे रवि जैसी, ऊग उठी विश्वासों में
कितने प्रलय फेरियाँ देते, उनके नित्य विलासों में

यह ऊगन, यह खिलन धन्य है माली! उस पामाली में ॥
ये प्रकाश ने फैलाये हैं पैर, देख कर ख़ाली में ॥

: ११ :

पूजा का स्वर तो स्वैर नहीं होता है
पूजा के घर तो बैर नहीं होता है।

वृक्षों के पत्ते, फूल और फल झर कर
क्या दान कर रहे मातृ-भूमि को भर कर
यह नहीं जानते, खग का रैन-बसेरा
यह नहीं समझते यह तेरा, यह मेरा !

निन्दित अपमानित राम नहीं होता है
वैरी ढूँढ़ें तो काम नहीं होता है॥

: १२ :

फुंकरण कर, रे समय के साँप
कुंडली मत मार, अपने आप।

सूर्य की किरणों झरी सी
यह मरी सी,
यह सुनहली धूल;
लोग कहते हैं
फुलाती है धरा के फूल !

इस सुनहरी दृष्टि से हर बार
कर चुका—मैं झुक सकूँ—इनकार !

मैं करूँ वरदान सा अभिशाप
फुंकरण कर, रे समय के साँप !

क्या हुआ, हिम के शिखर, ऊँचे हुए, ऊँचे उठे
चमकते हैं, बस, चमक है अमर, कैसे दिन कटे !
और नीचे देखती है अलकनन्दा देख
उस हरित अभिमान की, अभिमानिनी स्मृति-रेख।
डग बढ़ा कर, मग बना कर, यह तरल सन्देश
ऊगती हरितावली पर, प्राणमय लिख लेख !
दौड़ती पतिता बनी, उत्थान का कर त्याग
छूट भागा जा रहा उन्मत्त से अनुराग !

मैं बनाऊँ पुण्य मीठा पाप
फुंकरण कर रे, समय के साँप।

३

किलकिलाहट की बजी शहनाइयाँ ऋतुराज
नीड़-राजकुमार जग आये, विहंग-किशोर !
इन क्षणों को काटकर, कुछ उन तृणों के पास
बड़ों को तज, ज़रा छोटों तक उठाओ ज़ोर ।
डालियाँ, पत्ते, पुहप, सबका नितान्त अभाव
प्राणियों पर प्राण देने का भरे से चाव

चल कि बलि पर हो विजय की माप ।
फुंकरण कर, रे समय के साँप ॥

: १३ :

कहो कि इतनी चाँदी मत बो उस चाँदी बोने वाले से
कहो न यों बरबाद करे, अपनी बखेर खोने वाले से।

माना श्रम विष का उतार है, माना छवि है श्रम की दासी
जग ले-ले घबड़ा जाता है, कितना देते हो संन्यासी !

किरन-जाल में बाँधे कितने रंग, रूप, रस, गंध अनोखे
पनघट से मरघट तक कितने अमर और ये कितने चोखे ?

कितनी अथक प्रकाश दायिनी
सूरज चंदा की यह जोड़ी
इनकी पहुँच उदार बाँट दे, बहुत नहीं तो थोड़ी-थोड़ी।

: १४ :

बहुत जान लेता हूँ, माना कभी - कभी
किन्तु किसी ने कहा कि वह तो ज्ञान नहीं
स्थितियाँ बिखर-बिखर पड़तीं दायें-बायें
अनुभूतियाँ क्षुधित हैं– वह अज्ञान नहीं।

तुम्हें, जानता हूँ कि जान पाया न तुम्हें मैं ॥
ज्ञान नहीं है, और यह कि अज्ञान नहीं ॥

बादल नीले, माटी काली, हरे-हरे वन
फूलों में कितने रंगों के बिखर पड़े धन
बिजली निकल-निकल पड़ती है जलधारों से
तुम कैसे हो, गल न सके जो की धारों से ?

साँस-साँस में गुँथे किन्तु पहचान नहीं ॥
ज्ञान नहीं है, और यह कि अज्ञान नहीं ॥

नन्हीं पलकें, विस्तृत-जग की सीमा-रेखा
अन्तर में तुम, बना सभी देखा, बेदेखा
वीणा के स्वर, वंशी की ध्वनि, यमुना के तट
मानव के गुनाह का बस इतना-सा लेखा ?

मान भला क्या करे ? जहाँ महमान नहीं ॥
ज्ञान नहीं है, और यह कि अज्ञान नहीं ॥

: १५ :

संन्ध्या के बस दो बोल सुहाने लगते हैं
सूरज की सौ-सौ बात नहीं भाती मुझको

बोल-बोल में बोल उठी मन की चिड़िया
नभ के ऊँचे पर उड़ जाना है भला-भला !
पंखों की सर-सर कि पवन की सन-सन पर
चढ़ता हो या सूरज होवे ढला-ढला !

यह उड़ान, इस बैरिन की मनमानी पर
मैं निहाल, गति रुद्ध नहीं भाती मुझको ॥
संन्ध्या के बस दो बोल सुहाने लगते हैं
सूरज की सौ-सौ बात नहीं भाती मुझको ॥

सूरज का संदेश उषा से सुन-सुन कर
गुन-गुन कर, घोंसले सजीव हुए सत्वर
छोटे-मोटे, सब पंख प्रयाण-प्रवीण हुए
अपने बूते आ गये गगन में उतर-उतर

ये कलरव कोमल कण्ठ सुहाने लगते हैं
वेदों की झंझावात नहीं भाती मुझको ॥
संन्ध्या के बस दो बोल सुहाने लगते हैं ॥
सूरज की सौ-सौ बात नहीं भाती मुझको ॥

जीवन के अरमानों के काफिले कहीं, ज्यों
आँखों के आँगन से जी के घर पहुँच गये

बरसों से दबे पुराने, उठ जी उठे उधर
सब लगने लगे कि हैं सब ये बस नये-नये।

जूएँ की हारों से ये मीठे लगते हैं
प्राणों की सौ सौग़ात नहीं भाती मुझको ॥
संन्ध्या के बस दो बोल सुहाने लगते हैं ॥
सूरज की सौ-सौ बात नहीं भाती मुझको ॥

ऊषा - संन्ध्या दोनों में लाली होती है
बकवासिन प्रिय किसकी घरवाली होती है
तारे ओढ़े जब रात सुहानी आती है
योगी की निस्पृह अटल. कहानी आती है।
नीड़ों को लौटे ही भाते हैं मुझे बहुत
नीड़ों की दुश्मन घात नहीं भाती मुझको ॥
संन्ध्या के बस दो बोल सुहाने लगते हैं
सूरज की सौ-सौ बात नहीं भाती मुझको ॥

: १६ :

ये मीठीं हो गईं
कि तुमने पूँछ-ताछ की इन साधों की
ये गर्वित हो गये
लगाई गिनती तुमने अपराधों की।

बोलों के कड़वे - मीठे
मोलों पर बिकने लगे इरादे
ऐसे गिरते भावों, कोई
क्यों अभाव के सपने लादे !

बाजीगर के खेलों जैसे
जीवन बाँटे जा न सकेंगे
वे अमृत कैसे पायेंगे
जो विषघट अपना न सकेंगे।

अर्पण के स्वर, तर्पण के वर
कृत्रिम आत्म-समर्पण, साधे
रस ने और रसा ने गौरव
बाँट लिये हैं आधे-आधे।

ऊँचे उठ कर बोल उठें हैं
अमृत को चिन्ता व्याधों की ॥
ये गर्वित हो उठे कि गिनती
तुमने की इन अपराधों की ॥

जाड़े की साँझ

किरनों की शाला बन्द हो गई चुप-चुप
अपने घर को चल पड़ी सहस्रों हँस-हँस
उद्दण्ड खेलतीं घुल-मिल होड़ा-होड़ी
रोके रंगों वाली छबियाँ ? किस का बस !

ये नटखट फिर से सुबह-सुबह आवेंगी
पंखनियाँ स्वागत-गीत कि जब गावेंगी ।
दूबों के आँसू टपक उठेंगे ऐसे
हों हर्ष वायु से बेक़ाबू से जैसे ।

कलियाँ हँस देंगी
फूलों के स्वर होगा
आगन्तुक-दल की आँखों का घर होगा,
ऊँचे उठना कलिकाओं का वर होगा
नीचे गिरना फूलों का ईश्वर होगा ।
शाला चमकेगी फिर ब्रह्माण्ड-भवन की
खेलेंगी आँख-मिचौनी नटखट मन की ।

इनके रूपों में नया रंग सा होगा
सोई दुनिया का स्वप्न दंग सा होगा
यह संध्या है, पक्षी चुप्पी साधेंगे
किरणों की शाला बन्द हो गई–
चुप चुप ।

: १८ :

समय के समर्थ अश्व मान लो
आज बन्धु ! चार पाँव ही चलो ।
छोड़ दो पहाड़ियाँ, उजाड़ियाँ
तुम उठो कि गाँव-गाँव ही चलो ॥

रूप फूल का कि रंग पत्र का
बढ़ चले कि धूप-छाँव ही चलो ॥
समय के समर्थ अश्व मान लो
आज बन्धु ! चार पाँव ही चलो ॥

वह खगोल के निराश स्वप्न सा
तीर[1] आज आर पार हो गया
आँधियों भरे अ-नाथ बोल तो
आज प्यार ! क्यों उदार हो गया ?

इस मनुष्य का ज़रा मज़ा चखो
किन्तु यार एक दाँव ही चलो ॥
समय के समर्थ अश्व मान लो
आज बन्धु ! चार पाँव ही चलो ॥

---

१. स्पुटनिक

: १६ :

कब मिलोगे, साँस की पहचान की कड़ुई कुरेदन[1] ?

दूर के अतिपास के, एकान्त के धन,
नज़र से नभ तलक के मीठे समर्थन
प्राण पर छायी हुई छाया क़दम की
चढ़ कि जिस पर लसित था बलिदान

अमर अविनाशी, नयन, मन के समर्पण !
कब मिलोगे, साँस की पहिचान की मीठी कुरेदन ?

तुम हुए जिस दिन कि वृन्दावन निवासी
उस दिवस से ढूँढ़ती अँखियाँ पियासी
विकलता के गीत की कड़ियाँ चुराकर
गा गया कोई गगन पर स्वर चढ़ाकर

व्याप्त ! तेरी प्राप्ति में किस तरह अड़चन !
कल मिलोगे, साँस की पहिचान की मीठी कुरेदन ॥

---

१. कबीर के 'अविनाशी दुलहा कब मिलिहो' से प्रेरित

: २० :

मधुर ! बादल, और बादल, और बादल आ रहे हैं
और संदेशा तुम्हारा बह उठा है, ला रहे हैं ॥

गरज में पुरुषार्थ उठता, बरस में करुणा उतरती
ऊग उठी हरीतिमा क्षण-क्षण नया शृङ्गार करती
बूँद-बूँद मचल उठी हैं, कृषक-बाल लुभा रहे हैं ॥
नेह ! संदेशा तुम्हारा बह उठा है, ला रहे हैं ॥

तड़ित की तह में समायी मूर्ति दृग झपका उठी है
तार-तार कि धार तेरी, बोल जी के गा उठी है
पंथियों से, पंछियों से नीड़ के रुख जा रहे हैं
मधुर ! बादल, और बादल, और बादल आ रहे हैं ॥

झाड़ियों का झूमना, तरु-वल्लरी का लहलहाना
द्रवित मिलने के इशारे, सजल छुपने का बहाना ।
तुम नहीं आये, न आवो, छबि तुम्हारी ला रहे हैं ॥
मधुर ! बादल, और बादल, और बादल छा रहे हैं,
और संदेशा तुम्हारा बह उठा है, ला रहे हैं ॥

: २१ :

काट दिये हैं नरम कलेजे कितने काली स्याही ने
कर डाली बरबाद सफ़ेदी इस श्यामल हरजाई ने।

कुटिल जीभ का ज़हर, मौन के मज़हब की मजबूरी है
इसमें पड़े कि तुमसे मेरी कितनी लांबी दूरी है!

इसने वेद रचे, क़ुरान पर इसकी छाया छायी है
ईसा, बुद्ध सभी की वाणी यह सहेज कर लायी है।

भले घास की, भले लौह की, भले स्वर्ण की क़लम रहे
दो जीभों में पड़कर इसने कैसे-कैसे बोल कहे!

पेट भर गये, क्या न कह दिया, इस चाही-अनचाही ने
काट दिये हैं नरम कलेजे कितने काली स्याही ने।

: २२ :

अर्द्ध-रात्रि, पिछले दरवाज़े, यह बरसन
बिजली में भी दीख न पड़ते श्याम-वदन !

चोरी-चोरी, क्या देखें, क्या खोयें यों
अपने सपने पानी में व्यर्थ डुबोयें यों।
गरज-गरज को बरज सको तो बरजो
कौन समय यह रातों-रातों लरजो !

बूँदों के रथ, लो, छबि उतरी अलबेली
तरु-बेलों ने, यह झूम सीस पर ले ली !
यमुना की धार बढ़ी कि लहर बन झूमें
तू छा उठे उदार कि तेरे पद चूमें !
कहाँ गई वह लूह भरी बैरिन तड़पन ?
अर्द्ध-रात्रि, पिछले दरवाज़े, यह बरसन !

ग्वाल और ग्वालिनियाँ मस्त विभोर हुई
गायें रँभा उठीं कि बरसती भोर हुई
पानी, पानी, खेत-खेत, नद-ताल हुए
ले हज़ार हाथों वर आज निहाल हुए !
इतने बरस उठे तुम ग्रीषम सुप्त हुई
तेरी मेरी की सीमाएँ लुप्त हुई
जी में आये ज्वार कि भू में बाढ़ चलीं
पोखर, नाले, नदी, पहाड़, उभाड़ चलीं
उतर उतर उट्ठीं बूँदों मीठी रुन-झुन ॥
अर्द्ध-रात्रि, पिछले दरवाज़े, यह बरसन ॥

: २३ :

नित आँख-मिचौनी खेल रहा, जग अमर तरुण है वृद्ध नहीं
इच्छाएँ क्षण-कुण्ठिता नहीं, लीलाएँ क्षण-आबद्ध नहीं।

सब ओर गुरुत्वाकर्षण है, यह है पृथिवी का चिर-स्वभाव
उर पर ऊगे से विमल भाव, नन्हें बच्चोंसे अमर दाँव।

कैसी अनहोनी अँगड़ाई, पतझर हो या होवे वसन्त
इस कविता की अनबना आदि, इस कथनी का कब सुना अन्त।

घुलते आराधन-केन्द्रों पर, धुलते से इन्द्रधनुष लटके
क्षण बनते, क्षण-क्षण मिट जाते, उपमान बने घूँघट पटके॥

यह कैसी आँखमिचौनी है, किसने मूँदी, क्यों खोल रहा ?
जो गीत गगन के खग गाते, क्यों साँस-साँस पर बोल रहा।

तुम सदा अछूते रहो नेह ! प्रलयंकर क्षण भी रहें शान्त
बहती पुतली पर तुम आओ तब भी गा उट्ठे प्राण-प्रान्त

कितनी मौलिक जीवन की द्युति, कितने मौलिक जग के बन्धन
जितनी अनुपम हों मनुहारें, उतना अविनाशी हो स्पन्दन॥

: २४ :

वीराना हो, वृन्दावन हो, तुमको वनवास नहीं लगता
चढ़ जाय चरण पर सहस बार, तुमको तो पास नहीं लगता।

मुरलिका, माधवी, मृदुहारिणि वृन्दा हो, व्रज की नारी हो
आराधन अनुनय छोड़ चले, तुमको तो त्रास नहीं लगता।

किसके शिर शैल चढ़ाये हैं हिमगिरि पर हिम देकर अपार
फिर पतनोन्मुखी धार देते तुमको उपहास नहीं लगता।

वह चरण-चरण चल रहा गान ! वह ग्राम-ग्राम का ग्रामदान
तुमको अपनी इस यात्रा में क्यों विधि का वास नहीं लगता।

इतनी भी प्रभुता बौनी क्या, इतनी क्या अर्पण में चुप्पी
क्यों अहरह आत्म-समर्पण में सीधा विश्वास नहीं लगता।

पूजा के द्वारों भीड़ लगी, वह क्यों एकान्त टटोल रहा
ईमान अश्रु से रीते, इनमें तेरा वास नहीं लगता ॥
वीराना हो, वृन्दावन हो, तुमको वनवास नहीं लगता ॥

गगन ! गायन सौवाँ अपराध

यह शिशुपाल कि कंठ-व्याल-सा
बैठा अंग पसार
आकर्षण के घनश्याम को
नेक न यह स्वीकार ।

भले खारा हो जाय अगाध ।
गगन ! गायन सौवाँ अपराध ॥

डोल-डोल उठते हैं जी के
भूमि और आकाश !
खुलें छोड़ देता है वैरी
अन्तर के मधु-द्वार

प्यार के क्षण का स्थायी व्याध ॥
गगन ! गायन सौवाँ अपराध ॥

इसकी ध्वनि, कृति उसकी, वारी !
देती जो पहचान तुम्हारी
ताण्डव और त्रिभंगी दोनों
माँगे भुजा पसार !

चाह अनगिनत, एक ही साध ॥
गगन ! गायन सौवाँ अपराध ॥

: २६ :

आकर चले गये,
क्षण बार-बार, होकर उदार, कब कितने छले गये ॥

बजी खिड़कियाँ, हिली पखुड़ियाँ, कलियों पर कुछ छाये
मैंने देखा, सूर्य-किरण से, दौड़ द्वार तक आये !
किन्तु लगे दरवाज़े देखे, ठिठक गये वे मौन
गुपचुप के संवादों जैसे लौट गये वे कौन ?
सूरज ढले गये ।
आकर चले गये ॥

साँसें और उसाँसें बारी-बारी देतीं पहरा
चिन्ता ने बिखरी चाहों का रंग कर दिया गहरा
मन ने जीवन के झूले पर कितने झोले खाये
कौन सत्य से फिसल पड़े थे, कौन स्वप्न में आये—
समझा कर चले गये ॥
आकर चले गये ॥

पलकों के तारों से भी वह आती है झंकार
किन्तु किसी की स्वर-लहरी में उठा न पाया ज्वार;
दर्पण तोड़ समर्पण की निधि जहाँ हुई तैयार
सूली तक पहुँचाने आया मुझको स्वर सुकुमार !
भरमा कर चले गये ॥
आकर चले गये ॥

५

अति-सौरभ की डाल-डाल पर छवि की कोयल कूके
आत्म-निवेदन कहे कि बहिना यह अवसर मत चूके
शब्दों के शोभा-गृह में चल उठ चाँदनी सजावें
जग न उठे सब सपने, निशि में धीरे-धीरे गावें

बरसा कर चले गये ॥
वे आकर चले गये ॥

मैं सुगन्ध, मैं अन्ध-प्रवासी, मैं अर्पण, मैं ज्वाला,
झर-झर कर ऊँचे उठ जाना, मैंने नित्य सँभाला
बिखर गये, वे बँधी मूठ से, विकल होश के दाने
सुकृति लूट ले गई मुझे, सब कुछ जाने-अनजाने।

वे खाकर चोट गये ॥
वे आये, लौट गये ॥

: २७ :

चलता सा, पंखे झलता सा
फिरता सा, क्षण-क्षण घिरता सा
ताड़न देता, बस कर लेता
एँड-एँड जमुहाई लेता

कौन फिरकनी खाता घर-घर ॥
उठ-उठ कर भीतर ही भीतर ॥

अन्तराल में कौन का लसे
इच्छाओं के सधे व्याल से
कौन नेह-रत खेल रहा है
इस घुमाव से; उस उछाल से

झरे तरल बन्दीगृह झर-झर ॥
उठ-उठ कर भीतर ही भीतर ॥

अंग-अंग की डाल-डाल से
गदराये जी से, निहाल से
पके-अधपके चाह-आम ले
पका-पका प्रार्थना-पाल से

हर्षित किसके सन्मुख घर-घर ॥
उठ-उठ कर भीतर ही भीतर ॥

इस क्रन्दन में, उस नन्दन में
खेल खेलते अभिनन्दन में
लिपट-लिपट जाता है ज़ालिम
काश्मीरी केशर चन्दन में

कौन बोलता है अमृत-स्वर ॥
उठ-उठ कर भीतर ही भीतर ॥

: २८ :

तू माँगे मधुर-दुलार प्यार।
मैं कहूँ प्राण तक हो उदार!
तू क्षण की बाजीगरी और
मैं युग-युग युग का अमितज्वार।

तुम हँसने का
मैं कसने का
बल खोजें।
तुम क्रम का
मैं जागृत श्रम का
सम्बल खोजें।
तुम प्राण भरे,
मैं प्राण-दान का प्रणय-तंत्र।
तुम सुन्दर,
मैं शाश्वत सत्यों का परम मंत्र!

तुम अनहोने,
मैं बौने हाथों का उठाव।
तुम परम शक्ति
मैं भक्ति-भावना भरा चाव।
तुम अमर कि मैं बस सहस बार चढ़ता क्षण हूँ।
तुम श्रम-विधान, मैं नित नव आत्म-समर्पण हूँ॥

: २९ :

यों न स्वर भर गा ! समर्पण

धीर तेरी वीरता पर
सौ सराह निहाल।
सुन न ले वृन्दा-विपिन की
विरहणी वृज-बाल !

चाह में, बे-चाह में मन की गली मत आ समर्पण !
यों न स्वर भर गा ! समर्पण

कोटि वे आराधना के बोल
वे अनजान !
प्राण में नित विहरते से
बन गये से प्रान।

सिहर को कैसे भुलावा दूँ, न धूम मचा समर्पण।
यों न स्वर भर गा ! समर्पण !
कल्पना की मोम के खिलवाड़
ये छल-भूप,

बाँध पाये नेह-धन को
ये न धर-धर रूप।

आन रख, तू बान पर मत नयन नीर बहा ! समर्पण !
यों न स्वर भर गा ! समर्पण !

: ३० :

कितना, लो कितना देखोगे ?

चाख-चाख नव-नवल विश्व-रस
लोगे और, और फिर लोगे !

तुम्हें ऊब आ गई जगत् से, साथी को-
तुमने क्या माना ?
तुमने उसका स्वाद न परखा, तुमने यह
वरदान न जाना !

इतना मौलिक, कितना भोगे ?
कितना, लो कितना देखोगे ?

कीचड़ से उठती हरियाली; उस पर
अरुण पुष्प मँडराना
विधि की क्षण-मौलिक बिखेर को
पंथी क्या तुमने पहिचाना ?

द्रुम-फल-फूल कहाँ तक लोगे !
कितना, लो कितना देखोगे ?

कितनी बूढ़ी है यह दुनिया
पर तुम बूढ़ी कह पाओगे ?
क्षण बढ़ती, चढ़ती, खिलती, फलती
बेलों क्या शरमाओगे ?

चटखन पर, बन मुसक चढ़ोगे ?
कितना, लो कितना देखोगे ?

अपनी कली-कली में दुनिया
अपने फूल-फूल पर भौंरे
बौर उठे हैं आम गगन पर
लो अब कोई इन सा बौरे !

ताँबा, चाँदी, सोना लोगे ?
कितना, लो कितना देखोगे ?

सूरज डूब रहा, छबि देखो
सूरज ऊग रहा छबि बाँधे !
छत्रियाँ ऊग-ऊग उट्ठी हैं
सिर पर लें, या ले लें काँधे ?

दो आखें ! कितना आरोगे ?
कितना, लो कितना देखोगे ?

: ३१ :

जीवन, यह मौलिक महमानी !

खट्टा, मीठा, कटुक, कसेला
कितने रस, कैसी गुण-खानी
हर अनुभूति अतृप्ति-दान में
बन जाती है आँधी-पानी

कितना दे देते हो दानी !
जीवन, यह मौलिक महमानी ॥

जीवन की बैठक में, कितने
भरे इरादे दायें-बायें
तानें रुकती नहीं भले ही
मिन्नत करें कि सौंहे खायें !

रागों पर चढ़ता है पानी ॥
जीवन, यह मौलिक महमानी ॥

ऊब उठें श्रम करते-करते
ऐसे प्रज्ञाहीन मिलेंगे
साँसों के लेते ऊबेंगे
ऐसे साहस-क्षीण मिलेंगे ।

कैसी है यह पतित कहानी ?
जीवन, यह मौलिक महमानी ॥

६

ऐसे भी हैं, श्रम के राही
जिन पर जग-छवि मँडराती है
ऊर्वे यहाँ मिटा करती हैं
वलियाँ हैं, आती-जाती हैं।

अगम अछूती श्रम की रानी !
जीवन, यह मौलिक महमानी ॥

: ३२ :

'क्षण' तुम भी कितने मीठे हो
तृण, तरु, लता सभी कहते हैं
पंछी बोल-बोल उठते हैं
तरु हैं, सदा मौन रहते हैं।

पंखशील गगनांगण में
सदियों से खेल रहे हैं, देखो !
ऊँचे उठतों के मनसूबे
नभ में बोल रहे हैं देखो।

चिर-नवीन, चिर-तरुण जगत् की
मौलिकता पल-पल पहिचानो
तब जीवन की प्रणय-प्रलय-गति
कितना स्वाद लिये है जानो।

: ३३ :

उठ महान्! तूने अपना स्वर
यों क्यों बेंच दिया?
प्रज्ञा दिग्वसना, कि प्राण का
पट क्यों खेंच दिया?

वे गाये, अनगाये स्वर सब
वे आये, बन आये वर सब
जीत-जीत कर, हार गये से
प्रलय बुद्धिबल के वे घर सब!

तुम बोले, युग बोला अहरह
गंगा थकी नहीं प्रिय बह-बह
इस घुमाव पर, उस बनाव पर
कैसे क्षण थक गये, असह-सह!

पानी बरसा
बाग़ ऊग आये अनमोले
रंग-रँगी पंखुड़ियों ने
अन्तर तर खोले;

पर बरसा पानी ही था
वह रक्त न निकला!

सिर दे पाता, क्या
कोई अनुरक्त न निकला ?

प्रज्ञा दिग्वसना ? कि प्राण का पट क्यों
खेंच दिया !
उठ महान् तूने अपना स्वर यों क्यों
बेंच दिया !

क्षणिक के आवर्त में उलझे महान् विशाल
संकुचित की बाँह में बँध गये युग-द्युतिमान

कल्पना की ललित रेशम-डोर
मिलाकर अपने सुकोमल छोर
बाँधने आई अमर की शक्ति
भूल आई स्वयं की अनुरक्ति

रिक्त-सी भर उठी
क्षण के महल
और जी से कह उठी
तू बहल !

विषमताएँ ले किरण उतरी धरा पर
चंचला लिपटीं अमावस की स्थिरा पर
चाह जैसीं चपल चमकें ढल गईं
गगन से वसुधा अकेली पड़ गई

तारकों से नाश की
कर पहल
और जी से कह उठी
तू बहल !

नियति की यति-सी लगा कर दाँव
साध कर बोली शिखर की छाँव
तुम रहो आश्वस्त मेरी गोद
हरित मेरे घर चिरंतन मोद

बह उठी यह
अलकनन्दा सहल
प्राण से कहने लगी
तू बहल !

स्वप्न-सुधियों की चिरन्तन दीप
जब उगल उठीं, गगन की सीप
तब उठे अँगड़ाइयों के ज्वार
मधुर तम के बढ़े पारावार

जागरण के बाग़ ऊगे
सुप्ति के कटहल
बह उठी मन्दाकिनी
बन अनगिनी छल-छल ॥
प्राण से कहने लगी तू बहल ॥

मुस्कराओ
अश्रु अपमानित न हों !

बीत कैसे जाय, जो बीते न सिर पर
रीत कैसे जाय ऐसी रीत घर-घर
श्वास सन्देशा चुरा कर ला रही है
देख तो किस तरह धीमी आ रही है

ये अभागिन बरस दें, बरसें भले, तुम—

मुस्कराओ,
अश्रु अपमानित न हों !

क्या कहा जग ने कि मग में भीर भारी
प्रार्थना उलझी, बनी कंटक बिचारी !
नज़र स्थिर है और बहती जा रही है
देख तो किस तरह धीमी आ रही है।

वे भले दीखें, न दीखें, वेदने तुम—

मुस्कराओ
अश्रु अपमानित न हों ।।

: ३६ :

यह असत्य कितना सच्चा है ?

बोल-बोल कर, हृदय खोल कर
जी से जी का भार तोल कर
वर्तन पर विचार रख-रख कर
जीवन-गति को गोल-मोल कर ।

लड़ कर धृति से कृति मानो
परम सत्य ही का बच्चा है ॥
यह असत्य कितना सच्चा है ?

ख़ाली है, सुनसान भरा है
ज्ञान यही अज्ञान भरा है
कसक-कसक उठती हैं बाहें
वेजाना मेहमान भरा है ।

क्षण-सा अमर
क्षणों-सा क्षण बल
मीराँ को
चरणों-सा सम्बल

७

श्याम-श्याम कहला कर
क्षण-क्षण
खेल रहा कृति-धवल
यश-धवल

उपनिषदों का अमर काव्य
राधा से खेल रहा, बच्चा है !
यह असत्य कितना सच्चा है ?

: ३७ :

सौन्दर्यों के काँटों पर बलि के गुलाब जब फूलें
भू-रानी की गोदों पर प्रतिभा के झूले झूलें।

फूलों से फल की दूरी कुछ दूर नहीं होती है
अलमस्तों की मज़दूरी मजबूर नहीं होती है।

कलियाँ जब घूँघट खोलें अँखियाँ जब भीतर झाँकें
किरनें निहाल हो चूमें आभा बिखरा कर ताकें।

काँटों की झुकी डाल पर मधु से मीठे फल आवें
हरिया उट्ठे मनचीती बलिदानों में बल आवें।

चिड़ियाँ चहकीं नभ-भू पर चुड़ियाँ खनकीं वसुधा की
खेलते हवा के झोंके सुन कथनी मर्म-व्यथा की।

: ३८ :

पूजा नव आत्म-समर्थन है
सेवा श्रम का संतत व्रत है
पूजा परिणामों का भय है
सेवा अनुराग भरा तप है।

पूजा आरामों की सुगन्धि
सेवा वनमाली का वन है
पूजा दर्शन की प्रणय-चाह
सेवा अर्पण है, जीवन है।

पूजा कि प्राप्ति का जगड्व्याल
सेवा का बदला प्राप्ति नहीं
सेवा कि पवन सी प्राण-वायु
पूजा में विधि की व्याप्ति नहीं।

पूजा दूरी की उदर-पूर्ति
सेवा सांनिध्य सयानी है
पूजा परदेशी की इच्छा
सेवा प्रभु की मेहमानी है।

पूजा क्षण की मुहताज नहीं
सेवा युग-भरी रवानी है
पूजा निज-पर का नित दिखाव
सेवा अनकथ अपनानी है

पूजा में द्रव्यों की सुगन्ध
सेवा में अनगिन अनुष्ठान
पूजा में छुपते आलजाल
सेवा तो प्रकट निशानी है।

सेवा-पूजा का गठ-बंधन
कर सके प्राण-निधि साथ-साथ
विधि के बोलों, श्रम के सीकर
तुल सकें तुला पर साथ-साथ।

पूजा से कहो
कि सेवा के चरणों पर हो
आनन्द कि श्रम के
स्नेह-भरे वरणों पर हो।

पूजा अपनी अनुराग-तृप्ति
सेवा बलि का जाग्रत विधान
पूजा के पंख नहीं होते
सेवा छू लेती आसमान।

पूजा मन्दिर की मदिर गन्ध
सेवा पथ-ठोकर की निशान
पूजा उपवन का मधु-गुलाब
सेवा भूखे को आत्म-दान

: ३९ :

लोग कहा करते हैं, ये सब, मान लिये, अपने हैं
जीवन ने समेट रक्खे हैं, ये मूठी भर सपने हैं !

इनमें गंगा-जमुना बहती, इनमें खेत हरे हैं
इनमें व्यथित नर्मदा की मोंडों के गीत भरे हैं।
काली माटी की उजली गोदी के अनुरोधों पर
ऊग उठी हैं वेद-ऋचाएँ कृतियों के पौधों पर।

जिनकी अहरह छवि पर दृग के पंख नहीं झँपने हैं।
जीवन ने समेट रक्खे हैं, ये मूठी भर सपने हैं ॥

अलसी के फूलों पर शोभित आभा श्याम गगन की
गेहूँ की बालों भर आईं निधियाँ वृन्दावन की
कृषक-जननि की गोदी के धन, खेल रहे दे ताली
उनकी कूकों वेणु बजाता है मानो वनमाली।

ये मसूर के दानें, माला के मोती, जपने हैं ॥
जीवन ने समेट रक्खे हैं मूठी भर सपने हैं ॥

पवन चली कि हिल उठे पौधे, झुक कर किये प्रणाम—
उन्हें जो कि विस्मरण-वरण में प्रभु के घर बदनाम !
नित्य-विहार, दुलार और संहार सभी फल आये
भू-रानी की गोदों वैभव हरियाये, भर आये

हरित बेलि, श्रम-हरण के लिए, राधा-कृष्ण सने हैं।
जीवन ने समेट रक्खे हैं, ये मूठी भर सपने हैं ॥

: ४० :

चपल-चरण धृत, विनत-चरण नत
कृत-संकल्प, कल्प की बाहों
उभय-आश जय, पतित विभव-भय
परणति सिद्ध, अल्प की छाहों ।

हारी-सी अनुहारें लेकर
नयनों में मनुहारें भर कर
चल यौवन विकल्प की राहों ।

अमृत-छबि-धर, माधव लेकर
खेल रहा सकुचाती आहों ।

प्रश्न-चिह्न बन
साँसों का धन
मधु-ऋतु पैर पखार रही द्रुत ।
अनबोले, अनमने, अनोखे
आये जी पर चपल-चरण धृत ।

: ४१ :

ये वृक्षों में उगे परिन्दे
पंखुड़ि-पंखुड़ि पंख लिये
अग जग में अपनी सुगन्धि का
दूर-पास विस्तार किये।

झाँक रहे हैं नभ में किसको
फिर अनगिनती पाँखों से
जो न झाँक पाया संसृति-पथ
कोटि-कोटि निज आँखों से।

श्याम धरा, हरि पीली डाली
हरी मूठ कस डाली
कली-कली बेचैन हो गई
झाँक उठी क्या लाली!

आकर्षण को छोड़ उठे ये
नभ के हरे प्रवासी
सूर्य-किरण सहलाने दौड़ी
हवा हो गई दासी।

बाँध दिये ये मुकुट कली मिस
कहा—धन्य हो यात्री!
धन्य तुम्हारा ऊपर चढ़ना
धन्य डाल नत गात्री।

पर होनी सुनती थी चुप-चुप
विधि-विधान का लेखा !
उसका ही था फूल
हरी थी, उसी भूमि की रेखा।

धूल-धूल हो गया फूल
गिर गये इरादे भू पर
युद्ध समाप्त, प्रकृति के ये
गिर आये प्यादे भू पर।

हो कल्याण गगन पर—
मन पर हो, मधुवाही गन्ध
हरी-हरी ऊँचे उठने की
बढ़ती रहे सुगन्ध !

पर ज़मीन पर पैर रहेंगे
प्राप्ति रहेगी भू पर
ऊपर होगी कीर्ति-कलापिनि
मूर्त्ति रहेगी भू पर ॥

: ४२ :

फल आये, विधि-संकेत, गगन के तारे
भू कोटि दीप ले हँस आरती उतारे
किरनों की ग़ैर-हाजिरी ? उँह क्या डर है
जब नेह-दीप, उग आये प्यारे-प्यारे !

खेतों ने कण प्रणवार दिये, फल आये
नभ पर होड़ा-होड़ी तारक भर छाये
देखा दीपों ने दीप्तिदान कर अपना
जगमग-जगमग वर लेकर घर-घर आये !

यों कण ने, क्षण ने, हँस-हँस जीवन-प्याली
भर-भर त्यागों, बलि की साधी दीवाली ।।

: ४३ :

इस तरह ढक्कन लगाया रात ने
इस तरफ़ या उस तरफ़ कोई न झाँके।

बुझ गया सूर्य
बुझ गया चाँद, तरु ओट लिये
गगन भागता है तारों की मोट लिये !

आगे-पीछे, ऊपर-नीचे
अग-जग में तुम हुए अकेले
छोड़ चली पहचान, पुष्पझर
रहे गंधवाही अलबेले।

ये प्रकाश के मरण-चिह्न तारे
इनमें कितना यौवन है ?
गिरि-कंदर पर, उजड़े घर पर
घूम रहे निःशंक मगन हैं।

घूम रही एकाकिनि वसुधा
जग पर एकाकी तम छाया
कलियाँ किन्तु निहाल हो उठीं
तू उनमें चुप-चुप भर आया

मुँह धो-धो कर दूब बुलाती
चरणों में छूना उकसाती
साँस मनोहर आती-जाती
मधु-संदेशे भर-भर लाती।

: ४४ :

चल चल चल चल
छोरियों सा न मचल
किरनों सा चढ़-चढ़
झरनों सा गिर-गिर

सपनों की हलचल
सूझ जैसी बन बल !
चल चल चल चल
छोरियों सा न मचल ॥

क्षण के ये नन्हें वीर
काल-सरिता के तीर
उठा रहे ये तूफ़ान
बहा रहे ये समीर

साँस गहराई बल
दृष्टि-डाँड ले सम्हल
चल चल चल चल
छोरियों सा न मचल

जीमें एक ज्वार ले
फिर पतवार ले
नेह-नौका डोल-डोल
तेरे प्रति बोल-बोल

दिन-सा न देख ढल
स्फूर्ति जैसा बढ़ चल
चल चल चल चल
छोरियों सा न मचल ॥

देख आग-सी लगा
जग दे रहा पवन
शीश माँगती धरा
शीश माँगता गगन

तट आ लगे चलो
हरि यों जगे, चलो
बुद्धिको कि तार के
तार-तार खींच दो

फिर उठ आये बल
संकट कुचल चल
चल चल चल चल
छोरियों सा न मचल ॥

: ४५ :

दीपों की जगमग-जगमग का वर लेकर
मुनि बनी, मौन का वर्धमान गुँथकर स्वर
होड़ा होड़ी कर आये खेत, गगन से
यामिनी निहाल हुई, भारत के घर-घर।

झाँका अभाव, रिमझिम की शान्त विदा का
आँका वसुधा ने, अन्नों ने भर ताका
बलिदानों से बलिदान बढ़े, युग खेला
यों दीप्ति दान का, लगा दीप का मेला।

भू और गगन की नेहभरी प्याली है
लघु निर्माणों की कितनी रखवाली है
इस महा एकरसता में बसती सी निधि
बढ़ उठे, क्षणों की अमृत दीवाली है।

: ४६ :

जब चाहूँ हँस सकूँ तुम्हारे प्यार में
झरने सा झर सकूँ चढ़ाव उतार में
विस्तृत ! तुम छाये से रहो अभाव में
क्षण-क्षण पाऊँ आये से इस गाँव में

रवि-किरणों की चोटें, रह-रह सह सकूँ
समझी-बेसमझी सब तुमसे कह सकूँ।

जब ऊगें नज़रों पर छाले आह के
जब-जब छा उठते हैं बादल वाह के
मैं अर्पित कर कर उठता हूँ स्वप्न से
तुम मतलब लेते हो सिर्फ़ गुनाह के।

ऐसे शिखर बनो कि खड़ा तो रह सकूँ
समझी-बेसमझी सब तुमसे कह सकूँ।

यादों से अपवादों तक उन्माद है
ऊब उठा, यह वाद है, वह वाद है
दो चरणों में कितनी युग-सौगात है
बिलकुल चुप हो ?-अच्छा तो यह बात है।

अमर-तरुण सा, साथ-साथ तो बह सकूँ
समझी-बेसमझी सब तुमसे कह सकूँ ॥

: ४७ :

कलित कलंक कुचलता आया सूझ को
नेह ! तुम्हारे प्रथम दोष के द्वार से ।

तुमने आराधन का स्वाँग सजा दिया
गीत गुणानुवाद का हँस कर गा लिया
रोये भी कितनी अनुपम मनुहार से
खीज-रीझ से सजे गर्व से, प्यार से

किन्तु न आना था वह चुप-चुप आ गया
नेह ! तुम्हारे प्रथम दोष के द्वार से ।

सौ प्रण किये, दिये कितने मधु दान भी
आकुल-व्याकुल हुए तुम्हारे प्रान भी
पर न उबर पाये फिसलन के ज्वार से
पतन-पराजित मूर्ख आत्म-उद्धार से

गुण बन कर आ गयीं भयंकर आदतें
नेह ! तुम्हारे प्रथम दोष के द्वार से ॥

तुम बोले—"अपि चेत्सु दुराचारो" सदा
भले सीस पर स्वयं मार लेते गदा
शयन जागरण रूप बने अभिसार के
घड़ियाँ बरसों पर चढ़ गईं दुलार के

आत्म-निवेदन, आज आत्म-कीर्तन बना
नेह तुम्हारे ! प्रथम दोष के द्वार से ॥

पीढ़ी पूजा, प्रणय पराजय, बन गये
कितने ही ये प्रगति-पुञ्ज हर दिन नये
अब अपने सब दिव्य सामने आ गये
उठी प्रार्थना, किन्तु भाव शरमा गये ।

केहरि ने घुस कर, हरि का आसन लिया
नेह ! तुम्हारे प्रथम दोष के द्वार से ॥

: ४८ :

[१]

तनिक से 'रंग' पर बदरंग होकर
प्रणय-विष-राग में कूँची डुबो कर
बना कर चित्र अधनंगा अधूरा
दिवाला व्यक्त कर लाये न पूरा ?

[२]

जिसे नाक़िस समझ कर दूर फेंका
वही आड़े दिनों में काम आया
घिसा समझा जिसे, बेकाम पाया
स्वयं की तौल वह मैंने सुनाया ।

[३]

चली जिस दिवस धीरज पर कटारी
अटारी पर विवशता मुसकराई
अधीरज दौड़कर गलफाँस लाया
उठा, वर्दी समझ जी से लगाई ।

[४]

निकलकर नेत्र के बलिदान-गृह से
चले जब अश्रु के ये दो कटोरे
बिलख कर नेह-निधिने दी बधाई
मुझी से बह चले मेहमान मेरे ॥

: ४६ :

[१]

तुझे सौ-सौ शपथ अभिमान की आ
करों से उठ कलेजे में समा जा
हृदय-वृन्दा-विपिन में वेणु बोले
ज़रा ईमान से बाज़ी लगा आ।

[२]

महावर ने तिलक से होड़ ली जब
समय का संतरी हँसने लगा तब
प्रतिज्ञा पर कि जब श्रृंगार छाया
तभी भगवान् अपने काम आया।

[३]

बुला उनको ज़रा सी हूक रख कर
कि ममतापूर्ण, स्वर दो टूक रख कर
जिये विश्वास, विष-आमिष न दे तू
कि चुन व्यक्तित्व थोड़ा-सा परख कर

[४]

प्रणय-दूषित, प्रलय-सौगन्ध वाले
सनकती गालियों स्वच्छन्द वाले
धरा पर जब जनो साहित्य ऐसा
गुनो मस्तिष्क के निकले दिवाले!

: ५० :

गाली में गरिमा घोल-घोल
क्यों बढ़ा लिया यह नेह-तोल

कितने मीठे, कितने प्यारे
अर्पण के अनजाने विरोध
कैसे नारद के भक्ति-सूत्र
आ गये कुञ्ज-वन शोध-शोध!

हिल उठे झूलने भरे झोल
गाली में गरिमा घोल-घोल।

जब बेढंगे हो उठे द्वार
जब बे काबू हो उठा ज्वार
इसने जिस दिन घनश्याम कहा
वह बोल उठा परवर-दिगार।

मणियों का भी क्या बने मोल।
गाली में गरिमा घोल-घोल।

ये बोले इनका मृदुल हास्य
वे कहें कि उनके मृदुल बोल
भूगोल चुटकियाँ देता है
वह नाच-नाच उट्ठा खगोल।

कुछ तो अपने फरफन्द खोल
गाली में गरिमा घोल-घोल॥

: ५१ :

[१]

प्रलय की साध चुप है, क्या बुरा है,
प्रणय तो शक्तिशाली कर लिया है
कि जब तलवार बरनी थी भुजा को
सजग श्रृंगार को तब वर लिया है !

[२]

हिमालय ने हमें जिस दिन पुकारा
सबल तारुण्य कविता लिख रहा था
हमारी रंगशाला में हिये की
चुके थे रंग, बस कालिख रहा था !

[३]

कला ने जब कलम से गाँठ जोड़ी
मधुर बलिदान को सूझी ठठोली !
ज़रा छुमसे, छनाछन से रिझाना,
चरित्रों पर लगाना आज बोली !

[४]

दया, दाक्षिण्य, सेवा, प्यार, श्रद्धा
हमारी वंचना के नाम हैं ये !
हृदय, मस्तिष्क, भुज, श्रम, शीष, जिह्वा
क्षणों की रोटियों के दाम हैं ये ।

कुछ लड़कर, कुछ रगड़-झगड़कर चले चलें
चलो एक ही पगडण्डी से चले चलें ॥

बाटों में कुछ काँटों का भ्रम, कुछ गति का श्रम
तुम साथ रहोगे पंथी को इतना क्या कम ?
तुम रूठ पड़ोगे ? बीच मार्ग में बार-बार
इतने संकुचित बनोगे तुम ? अभिमत उदार !

क्षण अपने को, अपने सपने को छले चलें ॥
चलो एक ही पगडण्डी से चले चलें ॥

उन्नयन गगन का, कल-कल यमुना के जल का
आदर्श पुराना, दर्शन धूलि भरे कल का
कितनी संस्मरण-वरण बेला की कसकें ये
सम्मोहन श्रम का, लालच एकाकी फल का

गिर-गिर हिमगिरि पर, हिमकण उतरें और गलें ॥
चलो एक ही पगडण्डी से चले चलें ॥

: ५३ :

चाहों के फल तुम हो
तो फिर इन चाहों के फूल कहाँ हैं ?
गंधवाह जिन पर निहाल थे
इन फूलों की धूल कहाँ है ?

झुकी-झुकी डालियाँ
इन्हीं के भारों क्या झुक-झुक पड़ती हैं
फिर क्यों इस सौन्दर्य-लोक में
काँटे हैं, अनियाँ गड़ती हैं ?

मादक मन्द पवन के झोंके
झुकना आठ याम करते हैं;
राजमार्ग सूने हैं, स्थिर हैं
ये किसको प्रणाम करते हैं ?

माटी से रूठ कर
उठे थे नव-नव
किस तपाक से तप-तप;
फिर क्यों माटी के ढेलों पर
सीस चढ़ा फूलों गिरते हैं ?

: ५४ :

सड़क नहीं, पगडण्डी ओझल
मिटे दीप के सब निशान हैं
अँधियारी के कुण्ठित कण्ठों
झिल्ली के अधबने गान हैं।

भटक-भटक थक गये इरादे
ढूँढ़-ढूँढ़ मनुहारें हारीं
पाँवों के काटों, सुधियों ने
बिंध-बिंध कर सब साधें वारीं !

कभी आग सी लगी, कभी
पानी सा बरसा जीवन-वन में
और वन्दना की कड़ियाँ
जगमगा उठीं लो भवन-भवन में।

किरन-किरन के तुक पर तुक
दीपक-दीपक पर कविता-रानी
जाने कहाँ, कि कितनी और
बड़ी होगी शृंखला सुहानी।

तारे मेघों हुए पराजित
चन्दा आज ग़ैर हाज़िर है
यह रिन्दों की अमर झोपड़ी
यह तो अलमस्तों का घर है

तुम मिल गये ! यहाँ ऐसे में
तुम पर युगल पुतलियाँ वारीं
कितनी महँगी, कितनी बेबस
कैसी है पहिचान तुम्हारी !

: ५५ :

[१]

कलह स्वातंत्र्य से बोला बहादुर !
समय में, शक्ति में, मेरा बसेरा ;
भले अंग्रेज़ जाएँ, किन्तु मैं हूँ ;
समूचा देश मेरा, सिर्फ़ मेरा !

[२]

गगन पर लिख गया कोई कहानी !
चमक कर वह बरसती है बराबर !
हरे से, फूल-फल वाले, लदे से ;
मगन बिखरा गया कोई धरा पर ।

[३]

हमारे प्राण की ईमान-लाली
तुम्हारी याद के सिन्दूर में है
सदा सन्देह साँपों ने टटोला
निकट जड़ का संदेशा दूर में है ।

[४]

हुए जब हम जुड़े-हाथों बहादुर
निकलते दाँत झुकते शीष औ' स्वर
तभी आराधना ने प्राण छोड़े
हमींने जब उलीचे अश्रु के स्वर ।

: ५६ :

हम भी कुछ करते रहते हैं, उस बबूल की छाँह में
हम भी श्रम के गीत सुनाते हैं ढोलक पर गाँव में

हम में भी आगई हरारत, बजी आज शहनाई है
केरल से काश्मीर तलक हम हैं, हम भाई-भाई हैं

कावेरी, कृष्णा कि नर्मदा गंगा जमना सिन्धु रहे
हमें न तोड़ सकेगा कोई, हम माँ-जाये बन्धु रहे !

चरण-चरण चल पड़ी मातृ-भू वरण-वरण सन्तान लिये
हैं छत्तीस करोड़ कि उनका अमित उचित अभिमान लिये ।

वेदों की अर्चना, तपों की धुन, गीता का गान लिये
जी में प्रभु को लिये, शीष पर आजादी का मान लिये ।

रण-वेदी पर, बलि-वेदी पर, श्रम-वेदी पर जहाँ रहें
लेकर शीश हथेली पर उठ आये, बोलो कहाँ रहें ?

: ५७ :

क्या कहा, गगन गर्वित है, गौरवमय है
तारे हैं, बादल उन्हें नहीं ढाँके हैं
विधि-बाला ने, हौले-हौले, स्वर साधे
नीलमकी साड़ी में मोती टाँके हैं।

किरनें होकर बेचैन, उतर चुप नभ से
दीपों के आँचल, लो अनगिनत समाई
नयनों के तारे, नभ के तारों उलझे
दीपों की लौ है, क्षण-क्षण लिये चुनौती

निशि के ये नक़ल-नवीस
कि नभ का लेखा
भू-रानी की भर गोद उतार रहे हैं!

ये हैं अभाव के भाव
दीप बन चमके,
वसुधा के आँचल
चमक रहे थम-थम के

विधि के ये सोये गान मधुर नीड़ों में
जग रहे मुदित अहसान आज भीड़ों में

भर उठी नेत्र सी नेह-नगर की प्याली
वैभव की पनिहारिन
आई दीवाली ।।

घड़ियाँ खेतों में रूप निखार रही हैं
नदियाँ निर्मल जल-धार सँवार रही हैं
पन्थी, पन्थों से घर-रुख लौट रहे हैं
अँगुली दीपों की ज्योति दुलार रही है ।

सी···! जलन छू गई
विधि की फूटी बोली
तम से निधियाँ
युग ने प्रकाश भर तोलीं

यामिनी-कामिनी लिये ज्योति का टीका
क्षण के व्रण सहती,
निरुद्देश्य सी भूली ।

पल-पल खोती, पाकर प्रकाश की लाली
अपने मन्दिर में मना रही दीवाली ।।

प्यारे भारत देश

गगन-गगन तेरा यश फहरा
पवन-पवन तेरा बल गहरा
क्षिति-जल-नभ पर डाल हिंडोले
चरण-चरण संचरण सुनहरा

ओ ऋषियों के त्वेष
प्यारे भारत देश ॥

वेदों से बलिदानों तक जो होड़ लगी
प्रथम प्रभात किरण से हिम में जोत जगी
उतर पड़ी गंगा खेतों खलिहानों तक
मानो आँसू आये बलि-महमानों तक

सुख कर जग के क्लेश
प्यारे भारत देश ॥

तेरे पर्वत शिखर कि नभ को भू के मौन इशारे
तेरे वन जग उठे पवन से हरित इरादे प्यारे !
राम-कृष्ण के लीलालय में उठे बुद्ध की वाणी
काबा से कैलाश तलक उमड़ी कविता कल्याणी

बातें करे दिनेश
प्यारे भारत देश ॥

जपी-तपी, संन्यासी, कर्षक कृष्ण रंग में डूबे
हम सब एक, अनेक रूप में, क्या उभरे क्या ऊबे
सजग एशिया की सीमा में रहता खेद नहीं
काले गोरे रंग बिरंगे हममें भेद नहीं

श्रम के भाग्य-निवेश
प्यारे भारत देश ॥

वह बज उठी बाँसुरी यमुना तट से धीरे-धीरे
उठ आई यह भरत-मेदिनी, शीतल मन्द समीरे
बोल रहा इतिहास, देश सोये रहस्य है खोल रहा
जय प्रयत्न, जिन पर आन्दोलित-जग हँस-हँस जय
बोल रहा,

जय-जय अमित अशेष
प्यारे भारत देश ॥

: ५६ :

जगत जग कर देख सपने सो रहे हैं
और पहरेदार अपने सो रहे हैं !
'...चोरजार शिखामणी' का देश है यह
मग-मँझे बटमार का आवेश है यह
आँसुओं में चाह विवश डुबो रहे हैं ॥
जगत जग कर देख सपने सो रहे हैं ॥

तीर ने जब तड़प कर तट की कहानी
तीव्र धारा को सुना डाली, न मानी
धार बोली, सत्य से अति दूर है यह
कल्पना के ज़हर से भरपूर है यह
तभी से वीरान देश भिजो रहे हैं ॥
जगत जग कर देख सपने सो रहे हैं ॥

प्रणय, वह अभिमान का मीठा बहाना
त्याग, वह नीलाम की दुनिया बसाना
जी रहे हैं, ठीक है, कुछ कम नहीं है
प्राप्ति का वैधव्य तो संयम नहीं है।
'मधु' पराये आज अपने हो रहे हैं।
जगत जग कर देख सपने सो रहे हैं ॥

: ६० :

काली काली सी पृष्ठ-भूमि बरसन रत
कर हरी-हरी सी भूमि कल्पना आवृत ।
संध्या लाली का सारा गर्व समेटे
अधमुँदी पलक से पूरी छबि रवि देखे ।

ये तीर तपन के, इन्द्र-धनुष पर साधे
यह प्रकृति गा रही चुपके राधे-राधे !

यह श्याम गौर छबि गगन पंथ में लख कर
संकल्पों से आगे अभिमत-रथ रख कर
यमुना के तट, वंशी वट के उस कोने
खेलते देख दो मृग-किशोर अनहोने

बजती वीणा सी सांसोंका स्वर बाँधे
दूबों_पर लिखती प्रकृति-वधू 'श्रीराधे' ।

: ६१ :

हरी दुनिया, उड़ो ओ पंखवालो
समय के शीश पर, उड़-उड़ के छाओ
चढ़ाई सीख सावन के घनों से
उठो, उठ कर ज़रा अपनी पै आओ।

उन्होंने अग्नि का संहार देखा
उठो पानी की ताकत भी दिखाओ
युगों को बाँध लो अपनी भुजा में
क्षणों की मंज़िलों में याद आओ।

मनों को यों छँटाकों से मिलाओ
वज़न का एक-सा परिवार पाओ
भुजाओं पर लिखो बलि की कहानी
नज़र पर साँस के नक़शे बनाओ।

इरादों रक्त की पहचान होवे
क्षमा ले शत्रु को बेबस बनाओ
गगन तक उठ, पवन के चित्र खींचो
फ़क़त अपनी कहन कहकर दिखाओ।

लिखी हो भाल पर जो भाग्य-रेखा
उसे क्षण-क्षण मिटा फिर-फिर बनाओ
हिमालय और गंगा से शपथ ले
बहो ऐसे कि सबके काम आओ।

: ६२ :

मेरे माधव का रूप श्याम-घन तेरा !

तेरी बोली का कुहू; कल्प की भाषा
उस मधुराई पर सौ-सौ कण्ठ निछावर
आमों की डालें गलबहियाँ दे-दे कर

हर रोज़ सजातीं तेरा रैन-बसेरा।
मेरे माधव का रूप श्याम-घन तेरा ॥

री नहीं डाल मतवाली तेरा घर है
अपने पंखों पर तेरा गर्व अछूता
तेरी उड़ान प्रतिभा-प्रभु का सन्देशा
तेरे वसन्त का मोल रहा बिन कूता

आमों के स्वादों घुल उठता स्वर-घेरा ॥
मेरे माधव का रूप श्याम-घन तेरा ॥

तू छोड़ जन्म का देश, चुहुल पर फूली
अभिमत उड़ान पर, दे सुविधा को सूली
आकाश-मार्ग, बन लांबी काली रेखा
तू गगन-गामिनी दो पंखों पर झूली।

छा गई व्याप्ति-सी लिये स्वल्प-सा घेरा
मेरे माधव का रूप श्याम-घन तेरा ॥

आँखों-सी तुझको लाज नहीं आती है
नज़रों-सी उड़ती कहाँ चली जाती है ?
पुतली-सा, चन्दनवारों वाला छोटा
तू अपना क्यों आवास न कर पाती है ?

तू नहीं मानती यह तेरा, यह मेरा
मेरे माधव का रूप श्याम-घन तेरा।

अन्धड़ बोला—लो अब डालें टूटेंगी
वृक्षों की अकड़न वायु आज लूटेगी।
तू हँस कर बोली—अत्याचारन आँधी
री दीन-दलनि, मेरा तू क्या कर लेगी !

पंखों पर रक्षित मेरा साँझ-सबेरा ॥
मेरे माधव का रूप श्याम-घन तेरा ॥

मेरा स्वर सागर की दहाड़ का घर है
मेरा स्वर गंगा के दुलार का वर है
मेरे स्वर पर उद्दण्ड पवन गर्वीला
मेरा स्वर सूर्य-तपन का कोप-भँवर है।

मेरा स्वर दुखियों की दूखों पर घेरा ॥
मेरे माधव का रूप श्याम-घन तेरा ॥

: ६३ :

बरस-बरस कर फूल याद पर, गगन कि आज निहाल बनो
लाशों की साँसों के गूँथो हार कि मालामाल बनो।

हमने उसे कि उसने हमको, जहाँ-जहाँ भी रोका था
प्राण-दान की क्रान्तिकारिणी एक पवन का झोंका था।

मरने की क़ीमत जीने ने उस दिन नहीं बिगाड़ी थी
उस दिन इन्सानों ने बाणों के रुख छाती तानी थी।

नर थे और नारियाँ भी थीं, रक्तदान था, होली थी
यों सशक्त, सार्थक, समर्थ, हमने तेरी जय बोली थी।

बिखरे केश कि बिखरे वैभव, क्या अलमस्त जवानी थी
रक्त-रक्त पर उतर रही थी, ऐसी अमर कहानी थी।

वतन जला, गोलियाँ दाग परदेशी हमसे खेला था
जीने वाली पीढ़ी हित उनके मरने का मेला था।

हारा हुआ सिपाही क़ैदी था, निन्दित अपराधी था
जीता हुआ लुटेरा, स्वामी था, शुभ था, संवादी था।

हार-जीत के ताने-बाने युग ने स्वयं लपेटे थे
उसे गर्व था, कोटि-कोटि उसके गरबीले बेटे थे।

पड़ी गोलियाँ, कलियाँ जैसे आसमान से बरस पड़ीं
उन्हें शीश लेने को युग की बोटी-बोटी तरस पड़ीं।

: ६४ :

[१]

रोने दो, लुट गया आज मैंने अपना जीवन खोया,
माता ने, मनुहार-दुलारा प्यारा मनमोहन खोया।
उजड़ गयीं ये कुंजें, दहली भूमि, लताएँ मुरझाईं,
आई, विषम वियोग व्यथा के दुर्दिन की आँधी आई
बाल सखाओं के हृदयों ने, प्राणों का पोषण छोड़ा,
वंशी की ध्वनि रुकी, कान्ह ने प्यारा वृन्दावन छोड़ा।

[२]

"एक ओर वह डूब रहा है, मेरा ही प्यारा भाई,
धर्म, नीति, पुरुषत्व, प्रेम ने भी हा-हा ! डुबकी खाई,"
'अब डूबे, अब डूबे' कह कर, गिरा उठा कर नचा रही
क्रूर नर्मदा की लहरें, प्रलय-काल थीं मचा रही।
कूद पड़ा—"यह कभी न होगा, मैं मर्दन कर दूँगा मान,
ये सब जीते रहें, किये देता हूँ मैं अपना बलिदान।"

[३]

भाई ! यों मत नाता तोड़ो, मानो, मानो, मानो बात
कर्णधार, है बीच धार में छोड़ न जर्जर तरणी तात !
भँवर कठोर, ज़ोर है भारी, हैं उसमें व्याकुल बेहाल,
तुझे देखकर वे जीते हैं, दौड़, दौड़ आ दौड़ सँभाल !
चुप रह लेंगे, सब सह लेंगे, तुझ पर कोई चोट न हो,
[illegible] दुनिया की ओर [illegible] देंगे, तू आँखों की ओट न हो !

[४]

विश्वासों की विमल क्यारियाँ, भावों के पौधे प्यारे,
आशा की लहलही लताएँ, परम प्रीति उलझन धारे।
कल-कोमल-कलाप के पल्लव, मनसूबों के ये फल-फूल,
देश-भक्ति की हरियाली,—ये साहस की कुंजें सुख-मूल।
जीवन की यह कर्म-वाटिका, कूजित तव तानों वाली,
सूख न जावे,—इसे छोड़ मत, हे मनमोहन वनमाली!

[५]

मृदुल मृदंग बजाने वाला, तम्बूरे का झनकारी,
प्रेम-प्रपंची से पंचम की प्राण-सुधा वर्षाकारी!
मंजुल मंजीरों वाला, यह इकतारे का तार लिये,
मस्त हुई थी माता, कर में विजयी दिन का हार लिये,
तेरी तानों पर सबने ही, अपने प्राण भुला डाले,
हाय न ऐसे समय त्याग तू, इन सबको वंशीवाले।

[६]

देखा, देखा, देखा,—-पर तू नहीं दिखाई देता वीर,
वीतराग हो होकर, कैसे तेरे विना रहें हे धीर,
शंकारहित हृदय दुनिया को तजा कौन शंका आई!
कष्टों के संहारक! तुझको कौन कष्ट था दुखदाई!
रमने वाले रोम-रोम में अपनों के जीवन के राम,
कर्मवीर! आओ, सिखलाओ, वही विशाल कर्म निष्काम

[७]

देवों का स्वागत स्वीकारा,—क्या हम सब कर सके नहीं
वीर! तुम्हारी पुण्य-भावनाओं को शिर धर सके नहीं!

शंकर रूप ! कहो, क्या हम दुखियों का दुख हर सके नहीं,
कर्मवीर ! अपनी कृति से हम तेरा मन भर सके नहीं,
रह-रह कर रोते ही छोड़े, लौटो, ऐसा करो न वीर !
हम सबके हित नहीं, देश के हेतु लौट आओ हे वीर ।।

[८]

देश अजातशत्रु ! हम तुझ पर निज सर्वस्व चढ़ा देंगे,
वीर-पार्थ ! रुक जा तेरा श्रीकृष्ण सारथी ला देंगे,
शंकित होंगे नहीं, युद्ध में अपनी जान लगा देंगे,
करुणाघन ! तुझको पाने में पत्थर को पिघला देंगे,
रह जा, रह जा, रह जा भाई ! कह आकर अपना सन्देश
तुझको पाने को तप करता रहा, सदा यह पुण्य-प्रदेश ।

[९]

तोड़ी सभी रुकावट, मैंने, किया बाग़ हरियाला ख़ूब,
लदे फूल, फल फले अनोखे, ऐसा पानी डाला ख़ूब,
ललित लताएँ झूम रहीं थी, चूम रहीं थी भूमि अहा
उस कोकिल की कलित काकली ! नित्य मचाती धूम अहा
पर हा ! वह उड़ चली, चला हे वनमाली ! दौड़ो लाओ
वह इस नन्दन का जीवन है, उसे यहाँ पहुँचा जाओ ।

[१०]

"मुझे देव-दुर्लभ लगते हैं, मित्रों के ये वाद-विशेष,
पुण्य-भूमि भारत माता है,—सेवा मन्दिर मध्य-प्रदेश",
क्या ये सब अब त्याज हो गये ! या हो गई भयंकर भूल
या प्रतिनिधि बनकर पहुँचे हो, भारतमाता के अनुकूल,
या पहुँचे हो, जलियाँवाला के वीरों की सुध लाने,
या पहुँचे हो, जगदीश्वर को भारत की गति समझाने !

[११]

क्या होता है बन्धु स्वर्ग में भारत से बढ़कर अन्याय
क्या गोली से मारे जाते हैं, उसमें भी जन-समुदाय,
इसीलिए क्या वहाँ सहोगे जाकर के शस्त्रों के वार,
"कर्मवीर" तुम वहाँ मचाओगे क्या जाकर कठिन पुकार
क्या देवों में भी समता का सच्चा भाव जगाओगे,
दिव्य देववाणी में भी क्या कर्मवीर प्रकटाओगे।

[१२]

या हो रहा स्वर्ग में नाटक, मिलता नहीं, 'वीर' का पात्र
हुंकारों से कम्पित कर दे जो जगती के मण्डल मात्र
या नारद को ज्वर आया है, वे न सँभालेंगे अब काम,
इसीलिए तुमको ढूँढ़ा है, माधव ने अपना अभिराम
या श्रीकृष्ण बनाकर तुमको,—दर्शक होंगे गोपीनाथ,
मुरली, लकुटी, कमरी देंगे, प्यारे आज तुम्हारे हाथ।

[१३]

या बाजी लग रही, जुड़े हैं, वीर खेल-मैदानों में
तुम्हें खड़ा करते हैं श्री हरि उन स्वर्गीय-जवानों में,
क्यों कोई नीच कह उठा—भारत के सुत वीर नहीं,
इसीलिए श्री हरि घर पाये, तुम्हें बुलाते धीर नहीं!
तुमको पदक प्रदान करेंगे क्या हरि निज कर-कंजों से
चरण पड़ोगे, गले लगा लेंगे क्या हरि निज पंजों से।

[१४]

बन्धु! स्वर्ग की या उसके स्वामी की हमको चाह नहीं
तुम्हें चाहता हो प्राणों से, हमें ज़रा परवाह नहीं,

१२

तुम भारत-माता की निधि हो, सुनते ज़रा पुकार नहीं !
चना रहे ईश्वर, पर तुम पर उसका कुछ अधिकार नहीं !
आ जाओ दर्शन दो प्यारे विश्व दिखा दें सपना-सा,
तुम्हें खिझावें, तुम्हें रिझावें, तुम्हें बनावें अपना-सा।

[१५]

व्रज की रज खाने को आओ, प्रेम-प्रवाह बहाने को,
छंगुनि-शिखापर साहस का यह भारी शैल उठाने को
भक्ति भवानी के मतवालों को आदर्श दिखाने को।
क्षमता, समता, ममता, तीनों एक साथ सिखलाने को,
अमृत लो रघुनाथ तुम्हें वह आदर सहित पिला देंगे,
मेघनाथ वध की आशा से, पूछो तुम्हें जिला देंगे।

[१६]

"धीरज ?" हाँ ! यह कभी न बोलो, बोलो धीरज किसे रहे,
"गोदी में छोटी-सी बच्ची" क्या यह धीरज उसे रहे !
या जिसका दुनिया में दिखलाता सिरमौर नहीं,
जिसके लिए चरण रखने को जगती-तल में ठौर नहीं।
जिसके दाँत दूध के टूटे, जिसे न सुख-घटिका आई !
जिसके लिए, नर्क हो जीवन, कैसे धीरज हो भाई ?

[१७]

जिसने जीवन के दिन गिन-गिन, तुम पर ही अरमान किया
दुख-दारिद्र्य, उपेक्षा, झिड़की, नहीं किसी का ध्यान किया
परमेश्वर-सा मान, मनोमन्दिर में नित सम्मान किया,
हृदय चढ़ाया, सौख्य चढ़ाया, अपने को बलिदान किया !

देह कहाँ तक रह सकती है, जहाँ रही हो जान नहीं,
भक्त वहाँ कैसे जी पावें—जहाँ रहा भगवान् नहीं !

[१८]

रोते रहें ! व्यथा का बढ़ता ही जाता है ज़ोर सखे !
तेरी उस कल्याण-कथा का नहीं मिलेगा छोर सखे !
जिस जगदीश्वर ने कर डाला यह अनीति-व्यापार सखे,
क्या तुम उसमें सोच रहे हो सच्चेपन से प्यार सखे !
प्यार रहे,—पर उसपर मेरा, कहो कहाँ विश्वास रहा,
जीवन दो, अपना दर्शन दो, "लो आ पहुँचा" कहो अहा ?

[१६]

एकादशी फाल्गुनी काली,—क्रूर-नर्म्मदा के जल में,
नाम कलंकित करने वाले, विंध्याचल के अंचल में
जो हीरा रिपु ऋषि रस हरिमें, आहा ऊँचा ख़ूब गया,
कई करोड़ों का जीवन धन दौड़ो, दौड़ो डूब गया।
'धीर धरें'–अब अधिक न मारो, व्याकुल हैं क्या धीर धरें
सन्मुख अबला विधवा बच्ची ! सरवस दें या धीर धरें।

[२०]

"वीर ! हरोगे पीर हमारी" खाण्डव का अभिमान चला !
'पुण्य-प्रचारक होंगे यह पिछड़े-प्रदेश का ध्यान चला,'
'मेरे दुख सब दूर हरोगे'—माता का अरमान चला,
'आज मिला आदर्श हमारा'—युवकों का यह भान चला,
भान चला, अरमान चला, वह ध्यान चला, अभिमान चला,
सबको व्याकुल छोड़ कहाँ हे वीरवरों की शान चला !

टपक-टपक कर ये पूजा के पुष्प गिर रहे नीचे वीर !
अहा ! अश्रु के स्रोत, किस तरह पद-पद्मों को सींचे वीर !
दिखलाती क्षण मात्र न आती, कबतक आँखें मीचे वीर !
मंजुल-मूर्ति तुम्हारी कैसे भूमण्डल पर खीचें वीर !
अमरों के अद्भुत सेनापति एकबार हुंकार करो,
भैया, इस भारत मैया की नैया, आओ पार करो !

फरवरी १९२०

: ६५ :

दो मोड़ : दिल्ली का बल और पैदल

ठहर गईं आकर इस तट पर
दो नौकाएँ साथ !

एक क्षितिज को लाँघ
दूर का भर लाई संसार
अपने घर की लहर-लहर को
दूजी रही सँवार !

मानो विश्व जोड़ देंगे, विधि
उठा रहे दो हाथ ॥
दो नौकाएँ साथ ॥

कोटि-कोटि भुज-गौरव जग से
वहाँ माँगता दान
यहाँ तड़प पुरुषार्थ, प्रार्थनामय
माँगे शिर दान !

एक शक्ति पर, एक भक्ति पर
विहरी हुई सनाथ ॥
दो नौकाएँ साथ ॥

जग क्षण-क्षण आतंक करे
पश्चिम के आविष्कार
सूली चढ़ा पुकार उठे हैं
मिलन बावला प्यार !

उसे नित्य संघर्ष चाहिए
इसे नेह का हाथ ॥
दो नौकाएँ साथ ॥

साँस के प्रश्न-चिह्नों, लिखी स्वर-कथा
क्या व्यथा में घुली, बावली हो गई !
तारकों से मिली, चन्द्र को चूमती
दूधिया चाँदनी साँवली हो गई !

खेल खेली खुली, मंजरी से मिली
यों कली बेकली की छटा हो गई
वृक्ष की बाँह से छाँह आई उतर
खेलते फूल पर वह घटा हो गई ।

वृत्त लड़ियाँ बना, वे चटकती हुईं
ख़ूब चिड़ियाँ चली, शीश पै छा गई
वे विना रूप वाली, रसीली, शुभा
नन्दिता, वन्दिता, वायु को भा गई ।

चूँ चहक चुपचपाई फुदक फूल पर
क्या कहा वृक्ष ने, ये समा क्यों गई
बोलती वृन्त पर ये कहाँ सो गई
चुप रहीं तो भला प्यार को पा गईं ।

वह कहाँ बज उठी श्याम की बाँसुरी
बोल के झूलने झूल लहरा उठी
वह गगन, यह पवन, यह जलन, यह मिलन
नेह की डाल से रागिनी गा उठी !

ये शिखर, ये अँगुलियाँ उठीं भूमि की
क्या हुआ, किसलिए तिलमिलाने लगी
साँस क्यों आस से सुर मिलाने लगी
प्यास क्यों त्रास से दूर जाने लगी।

शीष के ये खिले वृन्द मकरन्द के
लो चढ़ायें नगाधीश के नाथ को
द्रुत उठायें, चलायें, चढ़ायें, मगन
हाथ में हाथ ले, माथ पर माथ को।

: ६७ :

किरणों ने औरों की आँखें
बिन आँखों वाली होकर भी खोली
मेघों ने बिन हरे हुए
खेतों में चुप-चुप हरियाली बोली ।

तरु ने बिन अद्रि हुए
ऊँचे उठनेका व्रत साधा
श्रम ने बिन प्राप्ति लखे
विधि-गति को कर आधा-आधा
आगे आनेवाले सुहाग को प्रणति कहा
जी का ? कि विन्ध्य का ?
तरल गीत बह उठा, बहा ॥

जो किरणों में बँधा
वही जीवन में भरते हैं
जो दीपक ने किया
वही तो हम भी करते हैं ॥

: ६८ :

गगन कह रहा था कि ठहरो बहादुर
पवन बह रहा था, लिये क्रान्ति के स्वर
मगन थी धरा वह मगन आसमां था
कि सिर दे रहे थे अनोखा समा था !

भले युद्ध में वीर सौ बार हारे
विजय आ गई इस सदी के सहारे !

पहाड़ों की क़िस्मत में बलिदान लिखकर
नदी बह पड़ी थी अकड़ कर, बिलखकर
गरम रक्त था, पीढ़ियाँ जग रही थीं
कि बाजी खुले प्राण की लग रही थीं।

फिरंगी से बढ़ कर के रंगीन थे हम
फ़क़त प्राण देने के शौक़ीन थे हम ॥

एक स्वर बोलो

जीवन में आता-सा, घूम कर जाता सा
विवश संकल्प में, जीवन जगाता सा
दूर की हेला सा, फूलते बेला सा
दौड़ती ऊग का ठहरता मेला सा

एक स्वर बोलो
एक, एक स्वर बोलो ॥

कोटि-पंथों जगी, कोटि दीपों लगी
आग-सी स्पष्ट वह स्नेह-बाती पगी
आ गई, जलन को, जीवन को वारती
देव-देव हर्ष उठे, बन गई आरती !

ओठ ज़रा खोलो,
एक, एक स्वर बोलो ॥

: ७० :

वेणु लो, गूँजे धरा मेरे सलोने श्याम
एशिया की गोपियों ने वेणि बाँधी है
गूँजते हों गान, घिरते हों अमित अभिमान
तारकों-सी नृत्य ने बारात साधी है।

युग-धरा से दृग-धरा तक खींच मधुर लकीर
उठ पड़े हैं चरण कितने लाड़ले छुम···से
आज अणु ने प्रणय से की प्रलय की टीका
विश्व-शिशु करता रहा प्रण-वाद जब तुमसे।

शील से लग पंचशील बना, लगी फिर होड़
विकल आगी पर तृणों के मोल की बकवास
भट्ठियाँ हैं, बोल हैं, हम शान्ति-रक्षक हैं
क्यों विकास करे भड़कता विश्व सत्यानाश !

वेद की-सी वाणियों-सी निम्नगा की दौड़
ऋषि-गुहा-संकल्प से ऊँचे उठे नगराज
घूमती धरती, सिसकती प्राण वाली साँस
श्याम तुमको खोजती, बोली विवश वह आज।

आज बल से, मधुर बलि की, यों छिड़े फिर होड़
जगत में उभरें अमित निर्माण, फिर निर्माण,

श्वास के पंखे झलें, ले एक और हिलोर
जहाँ व्रजवासिनि पुकारें वहाँ भेज त्राण।

हैं तुम्हारे साथ वंशी के उठे से वंश
और अपमानित उठा रक्खे अधर पर गान !
रस बरस उद्वा रसा से कसमसाहट ले
खुल गये हैं कान आशातीत आहट ले।

यह उठी आराधिका सी राधिका रसराज
विकल यमुना के स्वरों फिर बीन बोली आज !
क्षुधित फण पर क्रुधित फणि की नृत्य कर गणतंत्र
सर्जना के तंत्र ले, मधु-अर्चना के मंत्र !

आज कोई विश्व-दैत्य तुम्हें चुनौती दे
औ महाभारत न हो पाये सखे ! सुकुमार
बलवती अक्षौहिणियाँ विश्व - नाश करें
'शस्त्र मैं लूँगा नहीं' की कर सको हुँकार !

किन्तु प्रण की, प्राण की बाजी जगे उस दिन
हो कि इस भू-भाग पर ही जिस किसीका वार !
तब हथेली गर्विताएँ, कोटि शिर-गण देख
विजय पर हँस कर मनावें लाड़ला त्यौहार।

आज प्राण वसुन्धरा पर यों बिके से हैं
मरण के संकेत जीवन पर लिखे से हैं
मृत्यु की क़ीमत चुकायेंगे सखे ! मय सूद
दृष्टि पर हिम शैल हो, हर साँस में बारूद।

जग उठे नेपाल प्रहरी, हँस उठे गन्धार
उदधि-ज्वारों उमड़ आय वसुन्धरा में प्यार
अभय वैरागिन प्रतीक्षा अमर बोले बोल
एशिया की गोप - बाला उठें वेणी खोल !

नष्ट होने दो सखे ! संहार के सौ काम
वेणु लो, गूँजे धरा, मेरे सलोने श्याम ॥

: ७१ :

चट्टानों पर झर-झर भी, मैं भरा-भरा हूँ जैसे
दोनों तट में बँधी दौड़ है, डरा-डरा हूँ जैसे।
दायें-बायें ऊग उठा हूँ; हरा-हरा हूँ जैसे
ग्रीषम में सुधियों सा घायल, मरा-मरा हूँ जैसे

मैं बाढ़ों सा बेबस, बिन्दु-बिन्दु का शीतल बल हूँ
श्रम का भाग्य लेख, जीवन की बढ़ती का सम्बल हूँ।

मैं कल-कल करता हूँ तो ये, बेलें डोल रही हैं
उन पर बैठीं, अन्तर की पंखिनियाँ बोल रही हैं
बूँदें नभ से गिर ज़मीन के सपने घोल रही हैं
शीतल उद्भव बन; भव के ये बन्धन खोल रही हैं।

उस अदृश्य से इस रहस्य तक, खींच मधुर द्रव-रेखा
विधि ने लिख रख दिया, बूँद पर भूमि-भाग्यका लेखा ?

: ७२ :

ये सौ वर्ष, कि प्रखर प्रतीक्षा में बीती घड़ियाँ
ये सौ वर्ष कि कटीं विदेशी कारा की कड़ियाँ

आशा में अनुपस्थित पौरुष सपनों में सन्देह भरे
हिम-मण्डित ऊँचे शिखरोंके प्रति, नित कोटि सनेह भरे।

कितनी बार प्रतीक्षाओं ने कहा कि तुम आये, आये
कितनी बार समर्पण बोले; कितने विजय-गीत गाये

कानों के पावों की आहट आई थी आहत, धीमे
उन्मेषों के गड़े हिंडोले, युग झूले सूली चूमे!

अमित-यामिनी, विगत-कामिनी झर आई चाँदनी गगन
चले घोर उन्चास पवन थे, भर आये थे अपने मन।

उस इतिहास विश्व-साक्षी ने कहा कि रे गुलाम उठ चल
नन्हा बन, पीढ़ियाँ बना नन्हीं, सपनों के लिए मचल!

काल पृष्ठ पर, था अकाल भावों, सूझों, उन्मेषों का
काम नहीं आता था बढ़ना, पश्चिम के नव-देशों का।

गंगा, जमना और नर्मदा, कृष्णा, कावेरी का जल
रुक-रुककर मानो बहता था थम-थमकर कर रहा विकल।

उन्हीं दिनों तेरी पगध्वनि सुन साबरमती उमग आई
लाल-लाल हो गईं पुतलियाँ, विमल-कीर्ति प्रभुकी गाई।

भूमि - गगन पर अतल - वितल तक शक्ति गई
अभिनव रूप-किशोर ! तुम्हारी छबि हो आई नई-नई ।

एक पुकार हुई, मूरत पर, उठे सहस्रों सीस चढ़े
जहाँ एक का नाम पुकारा वहाँ नित्य दस-बीस चढ़े ।

कारागार हुए घर, मज़हब अपना वतन-परस्ती था
वायु और सपनों की पद-रज, बलि-पन्थों का लेखा था ।

रेखा विश्व-गगन पर खींची मगन प्रलय के राही ने
कष्टों ने जयगान किया, बलि गूँजें दीं शहनाई ने ।

मन्द पवन ने, विगत-स्मरण ने, विगत-चरण ने प्राण दिये
नयन दिये शत-शत जोड़ों ने, तरुणों ने बलिदान दिये ।

नये रक्त ने जूनी तलवारों की याद भुला डाली
तब भारत के चरणों जग ने, निर्मल आज़ादी डाली ॥
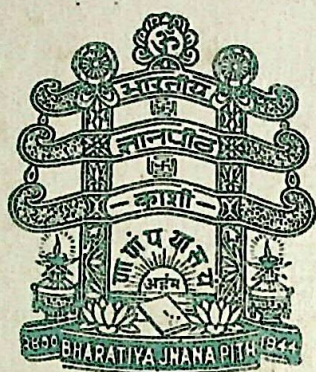
भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी
मौलिक-साहित्यका निर्माण

संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

मुद्रक—सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी—५